16. सातवाहन राज्यव्यवस्था

सातवाहनो का शासन दकन मे था। ये उन सभी भौतिक उपादानों से सज्जित थे जो इनसे पहले उत्तर भारत में शासन करनेवाले मौर्य राजाओं के पास थे। अर्थात इनके राज्य में सिक्को और लोहे के औजारों का भरपूर उपयोग होता था। इनके शासन की एक अन्य विशेषता यह थी कि भूमध्य सागरीय क्षेत्रो के साथ इनके राज्य का वृहत् व्यापार था। इसके परिणामस्वरूप रोम के सिक्के यहा प्रचुर प्रमाण में पहुचते थे, जिससे दकन मे बडे पैमाने पर शहरी बस्तियो की स्थापना हुई। इन तमाम बातो ने नई समस्याओ को जन्म दिया, जिनका समाधान ढूढ़ना इनके शासन का काम था।

सातवाहन आर्येतर जाति के थे और इनकी परपराए मातृवशीय थी। ये ब्राह्मण सस्कृति को अगीकार करनेवाले दकन के सबसे पहले राजवशों मे थे। एक बार नए सस्कारों को ग्रहण करने के बाद ये लोग वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थको के रूप मे आगे आए, किंतु बौद्धधर्म से भी इनका विरोध नही था। अभिलेखों से मालूम होता है कि ये बौद्ध भिक्षुओ तथा ब्राह्मणो को द्रव्य और भूमिअनुदान देनेवाले प्राचीनतम शासक थे। इन अनुदानों के फलस्वरूप बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण दोनो समान रूप से सातवाहन राज्यव्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण तत्व बन गए। मौर्य शासन के अनुभवों से लाभ उठाकर सातवाहनों ने अपने पैर उन क्षेत्रों पर जमाए जो किसी हद तक ठीक से आबाद थे और जिन पर बहुत-से छोटे-छोटे राजाओ और सरदारो का शासन था। जिस शासनपद्धति का उन्होंने विकास किया उसकी प्रकृति स्वदेशी थी और भारत-यूनानियों, शकों, पार्थियनो और कुषाणों द्वारा भारत मे लाई गई राज्यव्यवस्था से सर्वथा भिन्न थी।

मैसूर में प्राप्त शिलालेखो और आध्रप्रदेश के अमरावती मे प्राप्त स्तभलेख के एक टुकडे से स्पष्ट है कि इन क्षेत्रों के नरेश अशोक की शासनपद्धति से अवगत थे। स्वभावत , इसके कुछेक तत्व सातवाहनो के अधीन दकन के पश्चिमी हिस्से में भी कायम रहे। अशोक की तरह ही प्रारंभिक सातवाहन शासक राजा कहे जाते थे। यद्यपि गौतमीपुत्र शातकर्णी की माता गौतमी बलश्री का दावा है कि उसके पुत्र और पौत्र महाराज हैं,[1] किंतु गौतमीपुत्र और वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि में से किसी ने

भी वास्तव मे यह उपाधि धारण नही की। साथ ही इन शासकों ने वे आडबरपूर्ण उपाधिया भी धारण नहीं की जो कुषाण राजाओं की विशेषता थी। इसके अतिरिक्त, इन राजाओ ने अपने अधीनस्थ अधिकारियो को अपने आदेशों की सूचना उसी मुहावरे और उसी प्राकृत भाषा में दी है जो अशोक के शासन में प्रचलित थे। हा, सातवाहनो के ये अधिकारी कुमार, आर्यपुत्र या अशोक के अधिकारियो की तरह महामात्र नहीं, बल्कि अमात्य कहे जाते थे।

सातवाहन राज्य अशोक के राज्य की ही तरह आहारों या जिलों में बटा हुआ था। अशोक के अभिलेखो में आहारों के नाम नही दिए गए हैं, यद्यपि जिन अभिलेखो में इनका उल्लेख मिलता है उनके प्राप्तिस्थानो की दृष्टि से सोचें तो लगता है कि ये आहार मध्य प्रदेश तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में पडते थे। किंतु सातवाहन-अभिलेखो मे गोवर्धन आहार और कुछ अन्य आहारो का उल्लेख बहुधा हुआ है। यह प्रशासनिक इकाई वाकाटक राज्य में कायम रही, और गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तर काल के अभिलेखो के अनुसार इन कालों मे महाराष्ट्र और गुजरात में भी प्रचलित थी।[2] तीसरी शताब्दी के प्रथम चरण के एक सातवाहन पुरालेख से लगता है कि आहार और जनपद एक ही थे।[3] जनपद का उल्लेख कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी हुआ है और अशोक के अभिलेखों में भी। लेकिन नाम की समानता से ऐसा नही माना जा सकता कि सातवाहन जनपद (आहार) और अशोककालीन जनपद के आकार भी समान थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित जनपद के आकार को यदि लिया जाए तो अशोककालीन जनपद में सभवतः 3200 गाव होते थे।[4] इस प्रकार यह निश्चय ही बहुत बडी इकाई थी।

यद्यपि कौटिल्य ने महामात्रों का उल्लेख विरल स्थानों पर ही किया है, किंतु अशोक के अधीन महामात्र कहे जानेवाले अधिकारियों का एक सगठित संवर्ग (काडर) था, जिसके सदस्यो को तरह-तरह के कार्यों मे लगाया जाता था। उनका उल्लेख सातवाहन अभिलेखो मे भी हुआ है, और एक प्रसंग में वह बौद्ध भिक्षुओं की देखरेख के लिए जिम्मेदार अधिकारी जान पडता है।[5] इस तरह मोटे तौर पर उसकी तुलना अशोक के धम्ममहामात्र से की जा सकती है। लेकिन स्पष्ट है कि सातवाहन राज्य मे महामात्र नाम की सस्था उतनी व्यापक और महत्त्वपूर्ण नही थी। अशोक के महामात्रों वाला स्थान शायद सातवाहनों के अमात्यों या अमचों को प्राप्त था। भूमि अनुदानों या गुफाअनुदानों से संबंधित सभी राजादेशों की सूचना सातवाहन शासक अमात्यों या अमचों को ही देते थे। जातकों मे अमात्यो का उल्लेख सलाहकारो या मंत्रियों के रूप में हुआ है, लेकिन इनके बारे में सबसे विस्तृत जानकारी कौटिलीय 'अर्थशास्त्र' से मिलती है, जिसमें इनका उल्लेख अधिकारियों के ऐसे संवर्ग (काडर) के रूप मे हुआ है जिसमें से अन्य सभी उच्च पदाधिकारी लिए जाते हैं। विचित्र बात है कि अधिकारियों के इस महत्त्वपूर्ण वर्ग

का उल्लेख अशोक के अभिलेखों में नहीं हुआ है। जहां तक अभिलेखों का संबंध है, इनका उल्लेख सबसे पहले सातवाहनों के ही राज्य में मिलता है। इन अभिलेखों से प्रकट होता है कि गुप्तकाल की तरह सातवाहनों के अधीन अमात्य पद वंशानुगत नहीं था। विष्णुपालित,[6] शिवदत्त,[7] और श्यामक,[8] कम से कम इन तीन व्यक्तियों ने गौतमीपुत्र शातकर्णी के राज्यकाल में गोवर्धन आहार में अमात्य के पद पर काम किया। फिर, वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि के राजत्वकाल में 152 ई. में उसी स्थान पर अमात्य शिवस्कंद को कार्य करते देखते हैं।[9] 28 वर्षों के दौरान एक ही स्थान पर कार्य करनेवाले इन चार अधिकारियों के नामों से प्रकट होता है कि ये एक परिवार के भी नहीं थे। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक अमात्यों के भी उल्लेख मिलते हैं। जैसे परिगुप्त, जो शायद गौतमीपुत्र शातकर्णि[10] के अधीन काम करता था, और सनेरक[11], सर्वाक्षदलन तथा विष्णुपालि, जो कदाचित वासिष्ठीपुत्र शातकर्णि के अधीन काम करते थे।[12] किंतु इनमें से किसी भी उल्लेख से अमात्यपद के वंशानुगत रूप की जानकारी नहीं मिलती। कुछ अभिलेखों में राजामात्य का उल्लेख अवश्य हुआ है, पर अभी तक गुप्तकालीन कुमारामात्य का जिक्र किसी भी सातवाहन अभिलेख में देखने को नहीं मिला है। कुल मिलाकर, अमात्य सातवाहन राज्यव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण अंग थे। उन्हें वही स्थान प्राप्त था जो अशोक की शासनव्यवस्था में महामात्रों को और गुप्तों की राज्यव्यवस्था में कुमारामात्यों को था। जहां तक इनके कार्यों का संबंध है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे प्रकट होता हो कि ये सलाहकार या मंत्री का कार्य करते थे। कम से कम वे किसी संगठित निकाय के रूप में कार्य करते तो नहीं ही प्रतीत होते। लेकिन व्यक्तिगत रूप से वे प्रांतीय शासकों (गवर्नर), कोषागारिकों, भूमिदान निष्पादकों (एक्जिक्यूटर) आदि अनेक हैसियतों से कार्य करते थे।

अनेक अधिकारी शासनपत्र (लैंड चार्टर) लिखने से संबद्ध थे। एक प्रसंग में हम अमात्य को, दूसरे में प्रतीहार (जिसका प्रथम उल्लेख सातवाहन अभिलेखों में ही हुआ है) को और तीसरे में महासेनापति को शासनपत्र लेखक के रूप में देखते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि यह काम किसी एक अधिकारी के जिम्मे नहीं था, यद्यपि गुप्तोत्तर काल में यह काम मुख्यतः सांधिविग्रहिक ही करता था। सातवाहन राजे शासनपत्रों की देखरेख करनेवाले अधिकारी भी रखते थे, जिन्हें पट्टिकापालक कहते थे।[3] इनके अलावा, शासनपत्रों को उत्कीर्ण करनेवाले और भोक्ताओं को अनुदानों की सूचना देने वाले अधिकारी भी रखे जाते थे। लेकिन अशोक के राज्य के राजुक, प्रादेशिक, प्रतिवेदिक, पुरुष, युक्त, आदि किसी अधिकारी का उल्लेख सातवाहन-अभिलेखों में नहीं मिलता। यदि हम इस नकारात्मक साक्ष्य को प्रमाण मानें तो कहना होगा कि सातवाहन शासनतंत्र काफी सरल था।

संभव है, सातवाहन राज्य मे अधिकारियो को वेतन नकद दिया जाता रहा हो। कौटिल्य द्वारा 'अर्थशास्त्र' में अनुशंसित इस वेतनविधि का चलन सातवाहन राज्य में था, इसकी पुष्टि कार्षापणो के उन विभिन्न आंकड़ों की लंबी सूची से होती है जो नागनिका के नागाघाट गुफालेख[14] मे तथा अन्यत्र दिए गए हैं। इन आंकड़ों से पता चलता है कि विभिन्न यज्ञो के अवसर पर दी गई दक्षिणा की राशि 1,48,000 कार्षापण[15] से भी अधिक थी। नकद भुगतान की पुष्टि रांगे, पोटीन, तांबे और चांदी के उन असख्य सिक्को से होती है जो मुख्यत. महाराष्ट्र में, लेकिन किसी हद तक आध्र और मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों में भी मिले हैं। सातवाहन क्षेत्र में रोम की स्वर्णमुद्राए प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओ का उपयोग शायद बड़े-बड़े सौदों मे या धनसग्रह के लिए किया जाता होगा। लेकिन सातवाहन सिक्के स्पष्ट ही रोजमर्रा के सौदो मे, जिनमें अधिकारियो को वेतन की अदायगी भी शामिल थी, इस्तेमाल किए जाते होगे। किंतु इस सबसे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अधिकारियों को जिसों के रूप मे वेतन दिया ही नहीं जाता होगा।

सातवाहनो की राजस्वव्यवस्था का कुछ अंदाजा धार्मिक अनुदानों में दिए गए गावो मे प्रदत्त राजस्व विषयक रियायतों से लगाया जा सकता है। कर बसे हुए गांवो या आबाद जमीन पर लगाए जाते थे। नमक सहित समस्त खनिज संपदा राजा की मानी जाती थी। राज्याधिकारियों, पुलिस और सैनिको को ठहराने का भार किसानो के सिर डाला जा सकता था और इन सरकारी अमलों का खाना खर्चा या जिस तंत्र के ये अग थे उसके संचालन का खर्च किसानो से वसूल किया जा सकता था। देय-मेय[16] और भोग[17]—जैसे शब्द उपज मे राजा के हिस्से के द्योतक हैं। राजा कारुकर[18] भी प्राप्त करता था। इस शब्द का अर्थ कारीगरों से उगाहा गया कर लगाया जा सकता है। यदि ये कारीगर धर्मशास्त्रो की व्यवस्था के अनुसार महीने में एक दिन अपने सरदार (यहां महारठी वासिष्ठीपुत्र सोमदेव)[19] के लिए काम नहीं करते होगे तो संभव है कि कर की नकद अदायगी करते होगे। ऐसा मालूम होता है कि राजस्व नकद और माल दोनो रूपो में वसूल किया जाता होगा। साधारण धातु के जो बहुत-से सिक्के मिले हैं उनसे लगता है कि नकद वसूली कम नहीं होती थी। इस बात का समर्थन कोषपाल (ट्रेजरर) के लिए हैरण्यिक, यानी स्वर्णरक्षक, शब्द के प्रयोग से भी होता है।[20]

यहां पर इस बात का विचार करना अनुचित न होगा कि सातवाहन राजनीतिक सगठन पर दकन के उन्नतिशील कलाकौशल और बढ़ते हुए वाणिज्य-व्यापार के क्या प्रभाव हुए। एक अभिलेख मे एक अधिदर्शक (ओवरसियर) का जिक्र है, जिसकी देखरेख मे कारीगरों ने एक गुफा बनाई।[21] अधिदर्शकों (ओवरसियरो) के इस वर्ग मे बौद्ध भिक्षु, गुरुजन, व्यापारी आदि सम्मिलित थे। इन्हे नवकर्मिक और उपरक्षित[22] जैसी अनेक सज्ञाओं से अभिहित किया जाता था। राज्य से इनका कोई

वास्ता था या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है। अभिलेखों में बहुधा उल्लिखित विभिन्न प्रकार के कारीगरों और व्यापारियों (नैगमों) के समूहों से व्यवहार करने के लिए सातवाहन राजाओं ने कैसा संगठन कायम कर रखा था, इसका कोई संकेत नहीं मिलता है। लेकिन इतना निश्चित है कि उन्हें अपनी श्रेणियां (गिल्ड) बनाने की पूरी स्वतंत्रता थी, और राजपरिवार के सदस्य भी इन श्रेणियों में धर्मस्व राशियां जमा किया करते थे।

बौद्ध भिक्षुओं और संस्थाओं को दिए गए जिन अनुदानों का उल्लेख 'ल्यूडर्स लिस्ट' में हुआ है उनके अवलोकन से यह धारणा बनती है कि भरहुत और सांची में अधिकतर दान कारीगरों और गंधिक (जिससे गांधी उपाधि निकली) कहे जाने वाले एक व्यापारी वर्ग द्वारा दिए गए। लेकिन नासिक और जुन्नर गुफालेखों से प्रकट होता है कि बहुत-से व्यक्तिगत अनुदान नैकम या नैगम कहे जानेवाले व्यापारियों ने लिखे, हालांकि दाताओं के रूप में गंधिकों, सेठियों और सथवहों के नाम भी आए हैं। यदि व्यापारी धर्मखाते में इस तरह दिल खोलकर दान देते थे तो राज्य खुद अपने मामले में उन्हें कंजूसी क्यों करने देता? कारीगरों और व्यापारियों से राजा को होनेवाली आय के प्रत्यक्ष साक्ष्य बहुत कम मिलते हैं, किंतु कारुकर शब्द के प्रयोग से लगता है कि गांव में रहनेवाले कारीगरों को भी कर चुकाना होता था। घाटकर (फेरी ड्यूज), जिसे कुछ प्रसंगों में तो हम उपभदात[23] को वसूल करके भेजते देखते हैं, मुख्यतः व्यापारी ही देते होंगे। संभव है, सातवाहन राज्य के विभिन्न समुद्री बंदरगाहों में बने चुंगीघरों की देखरेख के लिए चुंगी अधिकारी भी रखे जाते होंगे, लेकिन हमें वास्तविक स्थिति जानने का कोई जरिया मालूम नहीं है।

सातवाहन राजा बड़े-बड़े सरकारी पदों पर शायद व्यापारियों को रखते थे। *उनके अमात्यों के नामों—जैसे शिवगुप्त और परिगुप्त—से लगता है कि वे वैश्य थे।* नगरव्यवस्था से व्यापारियों का घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। सातवाहन राज्य में इन नगरों की संख्या सबसे अधिक प्रतीत होती है। अभिलेखों में भरुच, सोपारा, कन्हेरी, कल्याण, पैठन, तगर (तेर), जुन्नर, कर्ले, गोवर्धन, नासिक और धान्यकटक नाम आए हैं। उत्खननों से अन्य अनेक नगरीय या अर्धनगरीय बस्तियों का भी पता चलता है। ये हैं मस्की, ब्रह्मगिरि, चंद्रवल्लि, ब्रह्मपुरी (कोल्हापुर), जोर्वे, कोंडपुर, बहल, संगंकल्लु, अमरावती, नागार्जुनिकोंड आदि। हम इनमें अरिकमेदु को भी शामिल कर सकते हैं। टालेमी ने जिस एरिएक एडेनन नामक प्रदेश का वर्णन किया है उसे सातवाहन राज्य मानने के अनेक आधार उपलब्ध हैं। टालेमी द्वारा वर्णित इस क्षेत्र में पांच बंदरगाह और अठारह अंतर्देशीय नगर थे।[24] बहुत संभव है कि इनमें से बहुत से नगर वही हैं जिनकी जानकारी अभिलेखों या उत्खननों से मिलती है। व्यापारी लोग अपना परिचय देने

में अपने माता-पिता के नामों की अपेक्षा अपने-अपने नगरों के नाम बताने को अधिक उत्सुक दिखाई देते हैं। अनेक नैगम बताते हैं कि वे कल्याण के निवासी हैं।[25] हमें सोपारा[26] के एक नैगम, कल्याण[27] के एक लोहार और धेनुकाकटक[28] के एक बढ़ई की भी जानकारी मिलती है। कुछ लोग अपने को मात्र निगमपुत्र, यानी नगरनिवासी, बताते हैं। यहां जो थोडे-से दृष्टात दिए गए हैं उनसे प्रकट होता है कि कारीगरों और व्यापारियों का अपने-अपने नगरों और अपने उस नागरिक जीवन पर, जिसमें उनका भी यथाशक्ति योगदान रहता होगा, कितना गर्व था। इस तरह के बहुत-से और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं, जो इस बात की ओर सकेत करते हैं कि व्यापारियों के लिए, वे किस जनजाति या परिवार के हैं, इसका उतना महत्त्व नही था जितना कि इसका कि वे किस क्षेत्र या नगर के हैं।

इनमें से कम से कम कुछ नगरों का प्रबध निगमसभा करती थी। उषभदात ने प्रथानुसार इसी सभा में अपने दानपत्र की घोषणा की और पजीयन करवाया।[29] कभी-कभी किसी नगर के निवासी सामूहिक रूप से भी दान देते थे। अमरावती के तक्षणों मे धान्यकटक नगर द्वारा दिए गए अनेक अनुदानों के उल्लेख हैं।[30] स्पष्ट ही निगमसभा के सदस्य व्यापारी ही होते थे, यद्यपि कुछ गृहपति भी इस हैसियत से काम करते थे।[31] स्थानीय प्रशासन में लोकतत्व की प्रधानता पर अनेक लेखको ने जोर दिया है। मगर यहा खासतौर से ध्यान देने लायक बात यह है कि पुरालेखो और उत्खननों से ईस्वी सन की प्रथम दो शताब्दियो में दकन और विशेषकर महाराष्ट्र में जितने अधिक नगरों के अस्तित्व का पता चलता है, प्राचीन इतिहास के अन्य किसी भी काल में इस क्षेत्र मे उतने अधिक नगरो के अस्तित्व की जानकारी नहीं मिलती। यह तो स्पष्ट ही है कि व्यापारी लोग प्राचीन भारत में नागरिक जीवन में जितने बडे पैमाने पर दकन में हाथ बटाते थे उतने बडे पैमाने पर और कहीं नही। व्यापारियो और कारीगरों के संघो से—जिन्हें अभिलेखों मे सेनि या श्रेणी और निकाय कहा गया है[32]—मिलनेवाले साक्ष्यों को भी ध्यान मे रखकर देखे तो कुल मिलाकर लगता है कि सातवाहनों के अधीन नागरिक जीवन का अभूतपूर्व विकास हुआ। व्यापारियों और कारीगरो के संघों का निगमसभा के साथ और निगमसभा का राज्य के साथ क्या सबंध था, इसकी जानकारी हमें नही है। लेकिन जाहिर है कि ये संघ राजा के लिए आर्थिक स्थायित्व के महत्त्वपूर्ण आधार थे, और संभव है, उसे नगर प्रशासन में भी सहायता देते रहे हों। विचित्र बात है कि सातवाहनों के उत्तराधिकारियो के अधीन इस्वी सन की छठी शताब्दी के अंत तक व्यापारियों के ऐसे संघों का कहीं कोई जिक्र देखने को नही मिलता।

सातवाहनों की एक और विशेषता, जो उनके शासन की समाप्ति के बाद अधिक समय तक कायम नहीं रह सकी, मातृक उत्तराधिकार की परपरा थी। इस परंपरा का संकेत सातवाहन राजाओं के मातृनामों और ऐसी ही कुछ अन्य बातों से

मिलता है, जहा गुप्त और गुप्तोत्तर राजा 'पितृपादानुध्यात' (अर्थात पिता के चरणों में अनुरक्त) कहे गए हैं, गौतमीपुत्र शातकर्णि को 'अविपनमातुसुसुक' (अनवरत मातृसेवा में रत) बताया गया है।[33] ध्यातव्य है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि, वासिष्ठीपुत्र पुलमावि,[34] वासिष्ठीपुत्र शातकर्णि, गौतमीपुत्र श्री विजय शातकर्णि और गौतमीपुत्र श्री यज्ञ शातकर्णि के नामों में उनके पिता के नाम नही जुड़े हुए हैं। यह उत्तर भारत में गुप्तों के काल में प्रचलित प्रथा से बिलकुल भिन्न है, क्योंकि इस काल में वहां राजा अपने नामों के साथ पितृनाम जोडना और अपने पिता के वास्तविक या काल्पनिक पराक्रमों का सोत्साह वर्णन करना कभी नहीं भूलते।

चूंकि अभिलेखों से ज्ञात पूर्वतम सातवाहन राजाओं—सिमुक और कृष्ण—के नामों के साथ मातृनाम नही जुडे हैं, इसलिए कुछ विद्वान ऐसा सोचते हैं कि सातवाहन राजवश में मातृवंशीय प्रथाएं आगे चलकर समाविष्ट हुईं। लेकिन जिस स्तरक्रम (स्ट्राटिग्राफिकल पोजीशन) से महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले में ब्रह्मपुरी[35] नामक स्थान पर वासिष्ठीपुत्र विलिवायकुर, माढरीपुत्र सिलवकुर और गौतमीपुत्र विलिवायकुर के सिक्के प्राप्त हुए हैं, उससे यह प्रमाणित होता है कि सातवाहनों के उदय के पूर्व से ही दकन में मातृवशीय प्रथाए प्रचलित थीं। यह प्रथा सातवाहनों के समकालीन और अधीनस्थ शासक घराने महारठियों में भी प्रचलित थी। मातृनामिकता सामान्य लोगों में भी प्रचलित थी, जैसे कि गृहपति कौंत (स्पष्टत: कुतीपुत्र) साब के नाम से प्रकट होगा।[36] मातृनामों का सभावित कारण मातृक उत्तराधिकार ही प्रतीत होता है, और चूंकि वशानुगत शासन में राज्य परिवार का ही वृहत्तर रूप होता था, इसलिए राज्य के सबंध में भी उत्तराधिकार की मातृक पद्धति ही लागू होती थी। उत्तराधिकार की ठीक-ठीक रीति क्या थी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किंतु मातृनामिकता से संकेत मिलता है कि राजाओं को सिंहासन अपने पिता से नही मिलता था। नायर समाज में पुत्री को उत्तराधिकार में मिली सपत्ति का प्रबंध उसका भाई और उसके न होने पर उसका पुत्र करता है। कदाचित यही दृष्टात गौतमीपुत्र शातकर्णि पर भी लागू होता हो, जो स्पष्ट ही अपनी माता के उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य की व्यवस्था करता था। यदा-कदा रानी अपने वैधानिक अधिकार का आग्रह करने से भी नही चूकती थी। उदाहरण के लिए, अपने पुत्र के राजत्वकाल के चौबीसवें वर्ष में उसने एक कृषिभूमि के अनुदान से सबंधित आदेश सीधे गोवर्धन आहार के शासक के पास भेज दिया। राजसिंहासन का वैध अधिकारी ही ऐसा व्यवहार कर सकता था, क्योंकि अशोक के अभिलेखों में या अन्य सातवाहन अभिलेखों में हम देखते हैं कि केवल राजा ही शासकों को आदेश भेजता था।

नागनिका द्वारा संपादित वैदिक यज्ञों की लंबी और प्रभावोत्पादक सूची स्त्रियों

के लिए यज्ञादि कर्मों का वर्णन करनेवाली वैदिक तथा ब्राह्मण संस्कृति की पितृतंत्रात्मक परंपरा पर मातृतंत्र के प्रभाव की द्योतक हैं। इसके खिलाफ यह दलील दी गई है कि नागनिका ने तो ये सारे यज्ञ अपने पति के साथ संपन्न किए,[37] किंतु संबंधित अभिलेख से यह अर्थ अनुचित खींचतान करके ही निकाला गया है कि इन यज्ञों में वह अपने पति की अर्धांगिनी थी। वास्तव में नागनिका की गरिमामय धार्मिक स्थिति के संबंध में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है, और ऐसा लगता है कि उसकी एक प्रतिमा भी सार्वजनिक रूप से प्रतिष्ठित की गई थी। इस सबके लिए उसे अनेक गांव, विपुल द्रव्य तथा बहुत-से पशु दान करने पड़े थे,[38] जिससे राजकोष निश्चय ही बहुत क्षीण हो गया होगा। रानी नागनिका राजकोष के धन का इस तरह व्यय कर सकती थी, यह उसकी उच्च राजनीतिक स्थिति का असंदिग्ध प्रमाण है। यद्यपि नागनिका तथा बलश्री,[39] इन दोनों रानियों ने अपना पूर्वेतिहास विस्तारपूर्वक दिया है, किंतु उनके भूमि अनुदान राजा द्वारा अनुमोदित नहीं किए गए हैं। इन रानियों का जिन गावों पर अधिकार था वे उन्हें निवाह अनुदानो के रूप में नहीं मिले हुए थे—जैसा कि हम चाहमनों के अधीन देखते हैं—बल्कि शायद मातृक उत्तराधिकार के अंशों के रूप मे प्राप्त हुए थे।

सातवाहन अधिकारियों और सामंतों की पत्नियां अपने पति का प्रशासकीय पदनाम धारण करती थीं, जिससे प्रकट होता है कि वे भी अपने पति की बराबरी की प्रतिष्ठा और प्रभाव की दावेदार थी। महासेनापत्नी[40] और महातलवारी[41] उपाधियां इसके प्रमाण हैं। एक भूमिदान शासनपत्र का प्रवर्तन करनेवाली महिला प्रतिहारी (द्वारपालिका) का भी अनोखा उदाहरण मिलता है।[42] ये सारे तथ्य सातवाहन शासनपद्धति में महिलाओ की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं।

यद्यपि गुप्त राजाओं के अभिलेखों में भी राजमाता का नामोल्लेख हुआ है, लेकिन वाकाटक राज्य की संरक्षिका के रूप में काम करनेवाली द्वितीय चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती को छोड़ किसी ने भी प्रशासन मे कोई उल्लेखनीय भूमिका नहीं निभाई। स्पष्ट है कि गुप्तों तथा गुप्तोत्तर राजवंशों की शासनपद्धति पर सातवाहनों की विरासत का कोई गंभीर प्रभाव नही पड़ा। अलबत्ता, पूर्व मध्यकालीन उड़ीसा में प्रशासन के क्षेत्र में महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

लेकिन सातवाहन राज्यव्यवस्था के अनेक तत्व चिरस्थायी सिद्ध हुए। हम गौतमीपुत्र शातकर्णि में अरोपित आलौकिक और अतिमानवीय विशिष्टताओं के उल्लेख से प्रारंभ कर सकते हैं। शक्ति और तेज मे उसकी तुलना राम, केशव, अर्जुन, भीम, नाभाग, नहुष, जनमेजय, सागर, ययाति, अंबरीष, पवन, गरुड़, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, भूत, गंधर्व, चारण, चंद्र, दिवाकर और नक्षत्र—जैसे कथा- कहानियों के पात्रों और अलौकिक शक्तियों से की गई है।[43] इन साम्यों से

किसी हद तक राजत्व के दैवी पक्ष का आभास मिलता है, जो गुप्त राजाओं के पुरालेखीय वर्णनों में स्पष्ट रूप से सामने आई है।

सातवाहन राजनीतिक पदाधिकारियों द्वारा 'महा' उपाधि का प्रयोग, वास्तव में, इस उपाधि के प्रयोग के प्राचीनतम दृष्टांतों में से है। बाद में गुप्त राजाओं, अधिकारियों और सामतो के पदनामों में इसका व्यापक प्रयोग होने लगा। सातवाहन राजा अपने को राजा ही कहते थे, हालांकि उनके अभिलेखों मे महाराज का उल्लेख मिलता है। महासेनापति, महारठी, महाभोज, महातलवार आदि अन्य पदनाम भी मिलते हैं, जो सातवाहन सामंतों की उपाधियां माने गए हैं। महारठी जैसे कुछ सामत सातवाहनो की तरह न केवल मातृनाम धारण करते थे, वरन उनका स्थान भी वशानुगत होता था,[44] जिससे वे स्वतत्र रूप से सिक्के जारी कर सकते थे[45] और ग्राम अनुदान दे सकते थे।[46] हम इक्ष्वाकुओं, चुटुसों, विष्णुकुंडिनों आदि को, तथा सातवाहनों की भी अन्य शाखाओं के सदस्यों को, जो स्पष्ट ही मुख्य सातवाहनों के सामंत थे, इनमें से कुछ उपाधियां धारण करते देखते हैं। 'महा' उपसर्ग के प्रयोग के साथ राजपुरुषों के बीच श्रेणिबद्ध और असमान सबधों का सूत्रपात होता है और उन उपाधियों का आरभ होता है जो पूर्व मध्यकाल के सामंती श्रेणि विन्यास मे व्यापक रूप से प्रचलित हुईं।

किंतु सातवाहन प्रशासनपद्धति का एक महत्त्वपूर्ण अंग, जिसका रूप आगे चलकर विकसित हुआ, ग्रामप्रशासन था, इस व्यवस्था में ग्रामीण लोगों की देखरेख का दायित्व या तो पुलिस और सेना को अथवा धर्मानुदानभोगियो को सौंप दिया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रो के प्रशासन मे कुछ विद्वान लोकत्व का भी समावेश देखते हैं,[47] किंतु अभिलेखों से इसका कोई सकेत नही मिलता। कवि हाल की 'गाथा सत्तसइ' को आधार मानकर यह कहा गया है कि ग्रामणी का अधिकार क्षेत्र पाच या दस गावो तक भी होता था।[48] लेकिन इस ग्रंथ के पांचवें अध्याय में—रहट्टघडिय— शब्द के उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि ग्रंथ का सकलन किसी समय ईस्वी सन की नवीं शताब्दी में हुआ होगा, जब से उत्तर भारत के अभिलेखों में सिचाई के इस फारसी तरीके का जिक्र होने लगा। यद्यपि सातवाहनों के धार्मिक अनुदानों के सिलसिले में अनेक गांवो के नाम बताए गए हैं, किंतु परवर्ती काल के शासनपत्रों की तरह, उनमें ग्रामप्रधानो (हेडमेन) और गुरुजनों (एल्डर) का कोई उल्लेख नही मिलता। ईस्वी सन की तीसरी शताब्दी के प्रथम चरण के एक अभिलेख[49] के आधार पर यह कहा गया है कि ग्राम का प्रबंध 'गामिक' या 'ग्रामिक' करता था। लेकिन जिसे 'गामिक' या 'ग्रामिक' पढ़कर ऐसा निष्कर्ष निकाला गया है वह महत्त्वपूर्ण शब्द 'गुमिक' प्रतीत होता है, जो गौल्मिक का प्राकृत रूप है।[50] इस शब्द को 'गुमिक' मानना उस सदर्भ से भी संगत जान पडता है जिसमें गौल्मिक कुमारदत्त को सातवाहणिहार के शासक महासेनापति स्कदनाग

का अधीनस्थ बताया गया है । उसी क्षेत्र से प्राप्त एक शताब्दी बाद के एक पल्लव ताम्रशासन पत्र में गुमिक या गौल्मिक को उन राज्याधिकारियों की सूची में शामिल किया है जिन्हें अनुदान की सूचना दी गई है ।[51] गौल्मिक गुल्म-प्रधान होता था ।[52] और ईस्वी सन की प्रथम चार शताब्दियों के स्रोतों के अनुसार गुल्म में नौ पत्तियां, अर्थात कुल मिलाकर 9 रथ, 9 हाथी, 27 घोडे और 45 पैदल सैनिक होते थे ।[53] बहुत सभव है कि इस काल तक युद्ध में रथों का उपयोग समाप्त हो गया था । लेकिन यह स्पष्ट है कि गुल्म सैनिक टुकडी थी । मनु का कहना है कि दो, तीन, पांच या सौ ग्रामों के बीच एक गुल्म रखा जाना चाहिए ।[54] पुलिस और सेना के मिले-जुले रूपवाला यह दस्ता स्पष्ट ही ग्राम्य क्षेत्र के निकट रहता था और वहां राजशक्ति का मुख्य प्रतीक होता था । ग्रामीण क्षेत्रों की व्यवस्था के लिए गुल्म तैनात किए जाने का प्राचीनतम साक्ष्य ईसवी सन की तीसरी शताब्दी का है और वह मैसूर में कृष्णा के दक्षिण बैलारी जिले मे प्राप्त हुआ है । इसके आधार पर यह मानना शायद उचित न हो कि इसका चलन पूर्ववर्ती काल में तथा दकन के उस पश्चिमी भाग में भी था जहा अधिकाश सातवाहन अभिलेख प्राप्त हुए हैं । ईस्वी सन की दूसरी शताब्दी मे भी महासेनापति शासनपत्र का प्रारूप तैयार करने जैसे कुछ गैरसैनिक कार्य किया करता था,[55] लेकिन यह ज्ञात नही कि इस तरह के अधिकारी पर बडी-बडी क्षेत्रीय इकाइयो की देखरेख की जिम्मेदारी होती थी या नहीं । सुकथंकर का विचार है कि ये सैनिक अधिकारी भू-सामत थे, और इनके अधीनस्थ क्षेत्र इन्हे जागीर के तौर पर मिले हुए थे । यह अनुमान सही हो या गलत, लेकिन क्षत्रिय शासकों के रूप में सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति की प्रथा अशोक के जनपद प्रशासन से बिलकुल भिन्न है, क्योंकि हम देखते हैं कि अशोक के जनपदशासन का दायित्व 'राजुक' कहे जानेवाले उच्च गैरसैनिक पदाधिकारी पर होता था । निस्सदेह, अशोक को सीमांत क्षेत्रों के लोगों को शात रखने की समस्या से बराबर जूझते रहना पडा, फिर भी उसने उन्हें सैनिक शासन के अधीन कभी नहीं रखा ।

सातवाहन ग्राम प्रशासन मे बलप्रयोग का तत्व विद्यमान था, ऐसा निष्कर्ष धर्मानुदानभोगियों को दी गई हिदायतों से भी निकाला जा सकता है । हम देखते हैं कि अनुदत्त कृषिक्षेत्रो तथा गांवो, दोनों को चाटो और भटो (सेना और पुलिस के लोगो) के प्रवेश तथा राजकीय अधिकारियों के हस्तक्षेप से मुक्त कर दिया जाता है । यो अनुदानभोगियों को करों की अदायगी से भी मुक्त कर दिया जाता था, किंतु शासनपत्रों में जोर करमुक्ति पर नही, बल्कि उपर्युक्त सुविधाओ पर ही दिया गया है । इससे यह धारणा बनती है कि राजकीय पुलिस, सैनिक, परिचर (रिटेनर) और अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रो में मनमाना व्यवहार करते होंगे और शोषण के कारगर साधन रहे होगे । वाकाटक राजाओं के अधीन यह चलन कायम रहा, बल्कि इसमें

और भी तीव्रता आ गई। उन्होने तो उन वस्तुओं का स्पष्ट निर्देश कर दिया जो ग्रामवासियों को विभिन्न राजकीय परिचरों को सुलभ करानी थीं। कालांतर से यह प्रथा पूर्व मध्यकाल की ग्रामीण शासनव्यवस्था की एक सामान्य विशेषता बन गई।

सातवाहन शासन के सैनिक स्वरूप का एक प्रमाण यह भी है कि उनके अभिलेखों में सैनिक शिविर के पर्याय कटक और स्कधावार जैसे शब्दों का प्रयोग बार-बार हुआ है। ऐसा मालूम होता है कि हरेक आहार का अपना कटक होता था। गोवर्धन आहार में स्थित वेनकटक[56] इसका एक उदाहरण है। शायद धेनुका कटक या धान्यकटक भी किसी आहार से जुड़ा कटक ही था। विजय-स्कंधावारों से शासनपत्र जारी करने का चलन, जिसका पूर्व मध्यकाल में व्यापक प्रचार हुआ, सातवाहनों ने ही आरभ किया।

भूमि अनुदान सातवाहन ग्राम प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। अभिलेखों से प्रकट होता है कि सातवाहनों ने ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुओं को राजस्विक तथा प्रशासनिक रियायतें देने का चलन शुरू किया। पुरालेखों में वर्णित भूमिदान का शायद सबसे प्राचीन दृष्टात नागनिका के नानाघाट गुफालेख से उपलब्ध होता है। रानी नागनिका ने अपने वैदिक यज्ञों के पुरोहितों को दक्षिणा में कई गांव दिए।[57] लेकिन अनुदत्त गावों में उन्हें कुछ रियायतें भी दी गईं या नही, इसका उल्लेख इसमें नही है। रियायतों का प्रथम उल्लेख ईस्वी सन की दूसरी शताब्दी के प्रथम चरण मे गौतमीपुत्र शातकर्णि के दानपत्र में मिलता है। इन रियायतों मे से एक यह भी है कि राज्य ने आबाद खेतों में मिलनेवाले नमक (जो शायद ऐसे सभी खेतों में नही ही मिलता होगा) पर अपने अधिकार का परिहार कर दिया है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सैनिकों, पुलिस के लोगों तथा राजपरिचरों को आदेश दिया गया है कि वे अनुदत्त गांवों या खेत के प्रबंध में हस्तक्षेप न करे। इस प्रकार अनुदत्त क्षेत्र पूर्णतः धार्मिक दानभोगियों के हाथों में चला जाता था।

ईस्वी सन की दूसरी शताब्दी के सातवाहन अभिलेखों में प्रयुक्त सर्वजाति परिहार[58] शब्द-समुच्चय से प्रकट होता है कि अनुदानभोगियों को सभी प्रकार की रियायतें दी जाती थीं। राजकीय शासनपत्र के अर्थ में परिहार की जो परिभाषा कौटिल्य ने की है उसके अनुसार उससे जाति विशेष, नगरविशेष, ग्रामविशेष या प्रदेशविशेष पर की गई राजकृपा का बोध होता है।[59] करमुक्ति के अर्थ में परिहार की सिफारिश नए बसे इलाकों के किसानों के लिए[60] तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में नाविकों और व्यापारियों के लिए भी की गई है।[61] सिचाई साधनों का जीर्णोद्धार करने वालों को भी इसी अर्थ मे पांच वर्षों के लिए परिहार प्रदान करने को कहा गया है।[62] 'अर्थशास्त्र' से हमें परिहार का उपभोग करनेवाले गांवों[60] और परिहार के

सहारे ही जीवनयापन करनेवाले राजकृपापात्रों[64] के उल्लेख भी देखने को मिलते हैं। कौटिल्य विशुद्ध रूप से धर्मनिरपेक्ष उद्देश्य से अर्थात अंततः राजकीय संसाधनों की वृद्धि के प्रयोजन से—परिहार की सिफारिश करते हैं। किंतु सातवाहन अभिलेखों में केवल धार्मिक प्रयोजनों से प्रदत्त परिहारों का उल्लेख है, और सिर्फ चार-पांच मदों में रियायत दी गई है।[65] ईस्वी सन की चौथी शताब्दी के एक पल्लव अभिलेख में अलग-अलग प्रकार के परिहारों (अष्टादश जातिपरिहार) का उल्लेख मिलता है।[66] इस अभिलेख के अनुसार सातवाहन राष्ट्र में भी इन परिहारों का प्रचलन था।[67] लेकिन हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ईस्वी सन की तीसरी शताब्दी के प्रारंभ से, जबकि यह क्षेत्र सातवाहनों के अधीन आया, कृषकों से ये सारे कर वसूल किए जाते थे या नहीं।

राजस्विक और प्रशासनिक अधिकारों का पूर्ण और स्थायी परिहार किया जाता रहा हो, ऐसी बात भी नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि ने बौद्ध भिक्षुओं के एक समूह को प्रदत्त गांव उनसे लेकर दूसरे समूह को दान दिया।[68] फिर, जान पड़ता है, गौतमीपुत्र ने भिक्षुओं को प्रदत्त एक क्षेत्र उनसे इस आधार पर वापस ले लिया कि वे उसमें खेती नहीं करते थे और गांव में लोग निवास नहीं कर रहे थे। इसके बदले उन्हे नगरसीमा पर दूसरी जमीन दी गई।[69] जो भी हो, सातवाहन राज्य में स्थायी भूमि अनुदान नहीं दिया जाता था। वैसे तो इस काल में भी हमें अक्षयनीवि[70] धृति (टेन्योर) का उल्लेख मिलता है, लेकिन अभी इसका अर्थ किसी क्षेत्र या वस्तु का स्थायी अनुदान नहीं, बल्कि अनुदत्त क्षेत्र या वस्तु का अक्षय स्वरूप ही मानना चाहिए।

स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए सातवाहनों ने दंडप्रयोग के साथ-साथ भिक्षुओं और पुरोहितों को अनुदान देने के उपाय से भी काम लिया। बौद्ध भिक्षुओं ने, जो अभिलेखों के अनुसार प्राचीनतम भूमि अनुदान-भोगी प्रतीत होते हैं, निश्चय ही सामान्य लोगों के बीच शांति और सदाचरण के नियमों का प्रचार किया होगा, जिससे प्रजा द्वारा राजसत्ता तथा समाजव्यवस्था को चुनौती दिए जाने के प्रसंग बहुत कम हो गए होंगे। वर्णव्यवस्था के नियमों का पालन करवाने के लिए उत्सुक ब्राह्मणों से गौतमीपुत्र का भी कुछ ऐसा ही प्रयोजन सिद्ध होता होगा। एक अभिलेख में शातकर्णि को एकमात्र ब्राह्मण और वर्णसंकरता का निवारक कहा है। सातवाहन लोग बनावटी प्रतीत होते हैं, और शायद यही कारण था कि उन्होंने ब्राह्मणव्यवस्था को इतना प्रबल समर्थन दिया। सातवाहन अभिलेखों में उल्लिखित चारों वर्ण सातवाहनों के राज्य में, शायद, समान रूप से सुस्थापित नहीं हो पाए थे और संभव है कि वर्णव्यवस्था की रक्षा के लिए राजा को वास्तव में सिर्फ शूद्रों को अनुशासित करने का काम ही करना पड़ता हो, हालांकि गौतमीपुत्र का दावा है कि उसने क्षत्रिय

राजाओ को नीचा दिखाया । इस राजा ने अपने जिम्मे जो कर्तव्य लिया है वह वही है जो कौटिल्य ने राजा के लिए निर्धारित किया है । आगे चलकर अभिलेखों में यही दावा गुप्त राजा, हर्षवर्धन और अन्य शासक भी करते हैं । लेकिन प्रचलित समाजव्यवस्था को कायम रखकर राजनीतिक स्थिरता में योगदान देने के राजकीय दायित्व पर सबसे पहले सातवाहनों ने ही जोर दिया ।

इस अध्ययन से सातवाहनों के राजनीतिक संगठन की जो तसवीर सामने आती है वह अधूरी है । हमे उनकी न्याय पद्धति की कोई भी जानकारी नही है, नागरिक प्रशासन की बहुत थोडी, तथा राजस्व और सैनिक संगठन की अपर्याप्त जानकारी ही सुलभ है । दूसरी और तीसरी शताब्दियों के अभिलेखों से पता चलता है कि उनका राज्य 'आहारो' और 'ग्रामो' में विभाजित था । 'आहार' ऊपर के स्तर की ईकाई था और गाव नीचे की स्तर की । 'आहार' शायद अमात्य या महासेनापति के अधीन होता था और गाव गौल्मिक के अधीन । क्षेत्रीय इकाइयों के प्रधान के रूप में दो परवर्ती अधिकारियो का उल्लेख हमें बैलारी जिले मे ईस्वी सन की तीसरी शताब्दी में मिलता है । इसलिए ऐसा मानना कठिन है कि यह साफ-सुथरी क्षेत्रीय व्यवस्था सपूर्ण सातवाहन राज्य में और पूरे सातवाहन शासनकाल मे लागू थी । अनेक पुरालेखीय साक्ष्यों से यह सकेत मिलता है कि भिक्षु और व्यापारी सातवाहन राज्यव्यवस्था के स्तभरूप थे । लेकिन प्रशासन मे उनका वास्तविक योगदान क्या था, यह हम नही बता सकते । सभवत. भिक्षु, उन्हें जो विपुल अनुदान मिलते थे, उनके बदले में लोगो के बीच शाति का प्रचार करते थे और व्यापारी इनके तथा राज्य के अन्य खर्चों के लिए आवश्यक साधन जुटाते थे ।

सातवाहन शासन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका दडात्मक, अर्थात सैनिक स्वरूप है, जिसका अदाजा एक तो इस बात से मिलता है कि ग्रामीण क्षेत्रो में पुलिस के लोगों तथा सैनिकों के प्रवेश और हस्तक्षेप के वर्जन का उल्लेख अनुदानों में दी गई एक प्रमुख रियायत की तरह किया गया है, और दूसरे, इससे कि हम प्रशासनाधिकारियों के लिए महासेनापति और गौल्मिक जैसे सैनिक पदनामों का चलन देखते हैं ।

सातवाहन प्रशासन पद्धति मौर्यों और गुप्तो के बीच, तथा उत्तर और दक्षिण के बीच की महत्त्वपूर्ण कडी प्रतीत होती है । सातवाहनो ने अशोक के प्रशासन के कुछेक तत्व कायम रखे, किंतु साथ ही, उन्होंने अनेक नए और महत्त्वपूर्ण तत्व समाविष्ट भी किए, जिन्हे आगे वाकाटकों और गुप्तो ने अपना लिया । उनके शासन मे महिलाओ और व्यापारियो द्वारा निभाई जानेवाली भूमिका अधिक दिनो तक कायम नही रही, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रो को सैनिक शासन में रखने तथा अनुदान मे राजस्विक और प्रशासनिक अधिकारो के परिहार की प्रथाए उत्तर और दक्षिण दोनो ही दिशाओ में फैली । इस दृष्टि से पल्लव प्रशासनपद्धति को सातवाहनों की

विरासत का दक्षिण दिशा म हुआ प्रसार माना जा सकता है। पल्लवो ने गुल्म प्रशासनपद्धति और परिहारों का सिलसिला कायम ही नहीं रखा, बल्कि इनके शासन में चौथी सदी मे परिहारों की सख्या अठारह और छठी सदी में पैंतीस तक पहुच गई।

संदर्भ और टिप्पणियां

1 सिलेक्ट इंस्क्रिप्शास, II, स 86, पंक्ति 10
2 एच सी रायचौधरी का विचार है कि सातवाहन काल के बाद आहार शायद लुप्त हो गए (जी याजदानी-सपादित, अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि देकन, भाग I-IV पृ 45) लेकिन अभिलेखों से इस बात का समर्थन नहीं होता
3 जनपदे सातवहणिहारे, से इ, II, स 90, पंक्ति 2
4 'स्थानीय' में 800 गाव पडते थे (अर्थ II-2 1) यह जनपद का अग था (अर्थ, II 2 3) जनपद राजस्व के प्रयोजनार्थ चार इकाइयों में विभाजित होता था। (II 2 34) हर राजस्विक इकाई शायद स्थानीय के बराबर होती थी
5 वही, स 75, पंक्तिया 1-2
6 से इ II, स 83, पंक्ति 2
7 वही, पंक्ति 5
8 वही, स 84, पंक्ति 1
9 वही, स 87, पंक्ति 2
10 ल्यूडर्स लिस्ट, न. 1105
11 वही, 994
12 कलेक्टेड वर्क्स ऑफ आर जी भडारकर II, 242
13 से इ, II, स 87, 14 के सबध में सरकार का पाठ 'बटिक खेहि' है जिसका सस्कृत रूप वह पट्टिकापालके बताते हैं.
14 से इ, II, स 82
15 जी याजदानी, सपा, द अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि देकन, I VI, पृ 134, पादटिप्पणी 2
16 से इ, II, स 85, पंक्ति 3
17 वही, II, स 86, पंक्ति 11
18 वही, स 85, पंक्ति 3
19 वही
20 ल्यूडर्स लिस्ट, स 996, 1033 स 1141 में 'भाडाकारिकय' शब्द आया है
21 वही, 987
22 वही
23 से. इ II, स 59, पंक्ति 2
24 ज आं हि सो, xxii (1952-54), 69
25. ल्यूडर्स लिस्ट, स 1000-1, 1024 आदि
26. स 995

27 स. 1032.
28 स 1092
29 से इ, II स. 58, पंक्ति 4
30 सी शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन द मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम (बुलेटिन ऑफ द मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, न्यू सि जेनरल सेक्शन, IV मद्रास 1956), 275, 285.
31 व्ही एस बाखले, 'सातवाहनाज एंड द कंटेपररी क्षत्रपाज', ज. ब ब्रा. रॉ ए सो, न्यू सि, I, 57, अर्ली हिस्ट्री ऑफ द देकन, भाग I-IV, पृ. 135 पर उद्धृत.
32 ल्यूडर्स लिस्ट, स 1137, 1180, 1133, 1165.
33 से इ, II, स 86 प 4
34 वासिष्ठीपुत्र पुलमावि ने 'पितृस्नेहवश' एक गाव का दान किया था से इ II, सं 86, पंक्ति 11
35 परमेश्वरी लाल गुप्त, 'क्वाइस ऑफ ब्रह्मपुरी एक्सकेवेशस (1945-46)' दि बुलेटिन ऑफ दि देकन कालेज रिसर्च इस्टीट्यूट, जिल्द 21, पृ 45-47.
36 से इ II, स 90, प 3
37 डी सी सरकार, सें इ (द्वितीय सस्क), पृ 97, पादटिप्पणी 1.
38 से इ, II, स 82
39 वही, स 86
40 वही, स 89, पंक्ति 2
41 वही स 98, पंक्ति 9 यह ईस्वी सन् की तीसरी सदी के उत्तरार्ध का इक्ष्वाकु अभिलेख है
42 से इ, II, स 84, पंक्ति 6 इसे जिस रूप में डी सी सरकार ने पढ़ा है उसके आधार पर, तथा द्वितीय सस्करण के पृष्ठ 201 पर दी गई उसी की पादटिप्पणी के अनुसार, इस अभिलेख का यही अर्थ निकलता है
43 से इ, II, स 86, पंक्तिया 7-9
44 से इ, II, स 85, पंक्तिया 2-3
45 परमेश्वरी लाल गुप्त, दि बुलेटिन ऑफ दि देकन कालेज रिसर्च इस्टीट्यूट, जिल्द 21, 42-45
46 से इ, II, स 85, पंक्तिया 2-3.
47 जी याजदानी, सपा, अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि देकन, भाग I-IV, पृ. 135.
48 वही
49 से इ, II, स 90
50 ए इ, XIV 155, पादटिप्पणी 5
51 वही, III, स 65, पंक्ति 5
52 से इ, II स 90, पंक्ति 13 डी सी सरकार इसे 'गमिक' कहते हैं। सुकथकर इसे 'गुमिक-गौल्मिक' (ए ई, XIV 155, पा. टि 5) कहते हैं, जिसे डी डी कोसाबी ने अपनी पुस्तक एन इट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री, पृ 276 पर स्वीकार किया है.
53 कोसाबी की पूर्वोद्धृत पुस्तक के पृ 276 पर उद्धृत महाभारत, I-2. 15-17, और अमरकोश, II, 8-10 II.
54 VII 114
55 से इ, II, स 87, पंक्ति 4
56 से इ, II, स 83, पंक्ति 1
57 से इ II, स.. 82

58 वही, स 83, पंक्ति 4
59 अर्थ II 10
60 वही II.1.
61. वही, II 16
62 वही, III 9
63. वही, II 35.
64 वही, II 37
65 से इ , II, स. 83, पंक्तिया 3-4.
66. वही, III स 65, पंक्तिया 31-26
67 वही, I 27
68 वही, II स 87, पंक्तिया 2-4
69 वही, स 84, पंक्तिया 3-5
70 वही, स 87, पंक्तिया 2